हमें कैसे पता चला

माइक्रोवेव

के बारे में?

लेखक: आइज़क एसिमोव

चित्रकार: एरिका कोर्स

अनुवादक: अशोक गुप्ता

हमें कैसे पता चला

माइक्रोवेव

के बारे में?

पुस्तक के अध्याय

१. प्रकाश की लहरें और उनके रंग

सन १६६५ में २३ साल का अंग्रेज वैज्ञानिक आइजैक न्यूटन (Isaac Newton, १६४२-१७२७) प्रकाश की किरणों से खिलवाड़ कर रहा था. एक दिन जब सूरज तेजी से चमक रहा था, उसने अपने कमरे की सारी खिड़कियों के पर्दे डाल दिये जिससे कमरे में अँधेरा हो जाय. फिर उसने एक पर्दे में छोटा-सा छेद बनाया जिससे सूरज की बारीख किरण कमरे में आ सके. न्यूटन ने प्रकाश की इस किरण को शीशे के एक टुकड़े (प्रिज़्म) से गुजरने दिया. उसने देखा की प्रकाश की किरणें प्रिज़्म से गुजरते समय थोड़ी मुड़ (रिफ्रैक्ट हो) गयीं. उसने देखा -- प्रिज़्म से निकली हुईं प्रकाश की किरणों की दिशा, प्रिज़्म में घुसने से पहली किरणों की दिशा से अलग थी. अगर बीच में प्रिज़्म न होता तो प्रकाश की किरणें दीवार पर एक चमकदार गोला बना देतीं. चूंकि बीच में प्रिज़्म था, प्रकाश की किरणें फैल गईं और एक

न्यूटन

इंद्र-धनुष का जन्म हुआ. एक सिरे पर लाल रंग था. जैसे-जैसे प्रकाश के पट्टे को एक सिरे से देखना शुरू किया तो नारंगी, पीला, हरा, नीला, और बैंगनी रंग दिखा.
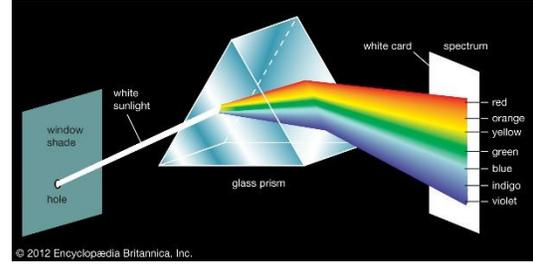
तुम्हारे चारों तरफ रंग ही रंग हैं -- अक्सर रंगीन वस्तुओं के रूप में तुम उन्हें छू सकते हो, महसूस कर सकते हो. परन्तु जो रंग न्यूटन ने दीवार पर पैदा किये, उन्हें छुआ नहीं जा सकता. वो तो प्रकाश के अंदर थे, किसी ठोस वस्तु में नहीं. तुम अपने हाथ को रंगीन प्रकाश के आर-पार ले जा सकते हो -- गोया वह कोई भूत हो! न्यूटन ने प्रकाश के इस रंगीले पट्टे को स्पैक्ट्रम कहा जिसका लेटिन में अर्थ होता है -- भूत!

प्रकाश में ये रंग कहाँ से आये? न्यूटन का सोचना था कि प्रकाश की किरण जो हमें सफेद दिखाई देती है, वास्तव में कई रंगों का मिश्रण है. जब प्रकाश की किरण प्रिज़्म से गुजरती है तो उसमें मौजूद विभिन्न रंग अलग-अलग मात्रा में मुड़ जाते हैं. लाल रंग सबसे कम मुड़ता है, और बैंगनी सबसे ज्यादा. अन्य रंग इन दोनों के बीच. इस कारण दीवार पर एक गोल धब्बे के बजाय एक रंगीन पट्टा दिखायी देता है.

क्या सचमुच ऐसा ही है? यह देखने लिये न्यूटन ने प्रकाश की किरण को एक प्रिज़्म से गुजरने दिया. इससे पहले कि प्रिज़्म से निकला प्रकाश दीवार तक पहुंचे, उसने उसे एक और प्रिज़्म जिसकी तिकोनी सतह पहले वाले से उल्टी दिशा में हो, रखा. प्रकाश की किरण पहले प्रिज़्म से निकलते समय एक तरफ मुड़ी, परन्तु दूसरे प्रिज़्म से निकलते समय वह उल्टी तरफ मुड़ गयी. पहले प्रिज़्म से निकलते समय प्रकाश की किरण अलग-अलग रंगों में बट गयी. परन्तु दूसरे प्रिज़्म से निकलते समय वो फिर एक साथ हो गयी. दोनों प्रिज़्मों से निकलने के बाद दीवार पर एक सफेद गोल धब्बा नजर आया. न्यूटन ने इस तरह यह सिद्ध कर दिया कि सब रंग मिल कर सफेद रंग पैदा करते हैं.
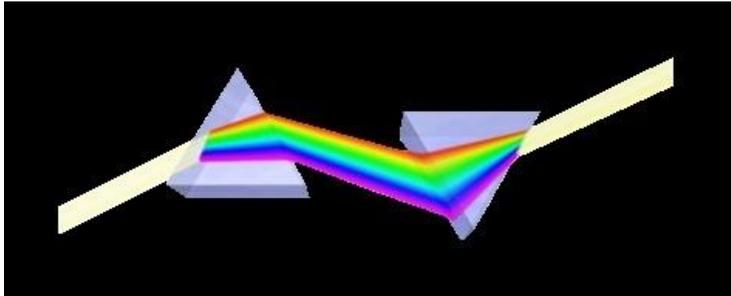
परन्तु प्रकाश में अलग-अलग रंग होते क्यों हैं? और वे प्रिज़्म से निकलते समय विभिन्न मात्राओं में क्यों मुड़ते हैं? इन प्रश्नों के उत्तर के लिए यह समझना जरूरी है की आखिर प्रकाश की किरणें बनी किस चीज की हैं. न्यूटन के समय किसी को इसका ज्ञान न था. फिर भी संभावनाऐं थीं: पहली, प्रकाश की किरणें एक लाइन में तेजी से बढ़ते हुए छोटे-छोटे कणों से बनीं हैं, या फिर दूसरी यह कि वे छोटी-छोटी लहरों की धारा हों.

वैज्ञानिकों को मालूम था कि बंदूक की गोली, कम से कम थोड़ी दूर तक तो, सीधी लाइन में चलती है. उन्हें यह भी मालूम था कि आवाज हवा में लहरों के रूप में आगे बढ़ती है. उन्होंने यह भी देखा है कि जब शांत तलाब में कंकड़ फेंका जाता है तो पानी की लहरें किस तरह आगे बढ़ती हैं.

लहरों के बारे में एक बात ध्यान देने की है -- वे रास्ते में आयी रुकावटों के किनारों से मुड़ कर आगे बढ़ जाती हैं.

पानी की लहरों को तो आपने रुकावटों के पार आगे बढ़ता देखा ही होगा. और आप कोने के दूसरी ओर हो रही बात-चीत भी सुन सकते हैं -- यानी कि ध्वनि की लहरें भी कोनों पर मुड़ सकती हैं. परन्तु बंदूक की गोलियां और प्रकाश की किरणें कोने पर नहीं मुड़ सकतीं. अगर कोई कोने के दूसरी ओर खड़ा हो तो हमें दिखाई नहीं देगा. प्रकाश की किरणें रुकावट के किनारे को पार करती हुई सीधी रेखा में आगे बढ़ती चली जायेंगी.

इस वजय से, न्यूटन ने सोचा कि प्रकाश की किरणें तेजी चलते हुए नन्हे-नन्हे कणों से बनीं हैं, लहरों से नहीं.

न्यूटन की सोच से सब वैज्ञानिक राजी न थे. एक डच वैज्ञानिक क्रिश्चन हाइगेंज (Christian Huygens, १६२९-१६६५) का कहना था प्रकाश की किरणें लहरों से बनीं हैं. उसका कहना था कि छोटी लहरें, बड़ी की तुलना में, रास्ते में आयी रुकावट में अधिक मुश्किल से मुड़ पायेंगी. इसलिये अगर प्रकाश की किरणें बहुत छोटी लहरों से बनीं हों तो रास्ते में रुकावट पड़ने पर शायद ही मुड़ पायें.

क्रिश्चन हाइगेंज

अधिकतर वैज्ञानिकों ने न्यूटन का साथ दिया. क्योंकि समय के साथ यह सिद्ध होता जा रहा था कि न्यूटन एक बहुत बड़ा वैज्ञानिक है. उसके सोचने का तरीका भला गलत कैसे हो सकता है?

फिर भी, कभी बड़े से बड़ा वैज्ञानिक भी गलत हो सकता है!

इस मसले को सुलझाया बिटिश वैज्ञानिक थॉमस यंग (Thomas Young, १७७३-१८२९) ने. उसे बहुत विषयों का ज्ञान था. हालांकि वह एक चिकित्सक था, उसने ब्रिटेनिका विश्व-कोष के लिये विभिन्न विषयों पर लेख लिखे थे. वह पहला व्यक्ति था जिसने प्राचीन यूनानी लिखावट का अर्थ समझने का प्रयास किया था. इतनी सारी उपलब्धियों के बावजूद, लोग उसे प्रकाश सम्बंधित प्रयोगों के लिये ही सबसे ज्यादा जानते हैं.

थॉमस यंग ध्वनि की लहरों का अध्ययन कर चुका था. उसे मालूम था कि जब ध्वनि की दो लहरें एक दूसरे के रास्ते में आती हैं, तो कभी-कभी वे एक दूसरे को काट देती हैं. उदाहरण के तौर पर मान लीजिये कि हवा ध्वनि की एक लहर को अंदर ला रही हो और दूसरी लहर को बाहर ले जा रही हो. जब दोनों लहरें एक दूसरे से मिलेंगी तो हवा किसी भी दिशा में हिल न पायेगी और हमें कोई आवाज सुनाई नहीं देगी. अगर ध्वनि की लहरों की लम्बाइयां अलग हों तो लम्बी लहर छोटी को कभी पछाड़ देगी और कभी साथ-साथ चलेगी. जब वे साथ-साथ चलेंगी तब हमें सामान्य से ज्यादा शोर सुनाई पड़ेगा और जब वे एक दूसरे के साथ नहीं चलेंगी तो हमें कोई आवाज सुनाई नहीं देगी. इस तरह शोर और शांति का सिल-सिला चलता रहेगा. इस सिल-सिले को थाप (बीट्स beats) कहते हैं. थाप कानों को अप्रिय भी लग सकती है. अगर प्रकाश कणों की धारा के रूप में होता तो ऐसा संभव न था. एक कण दूसरे को नहीं काट सकता.

थॉमस यंग
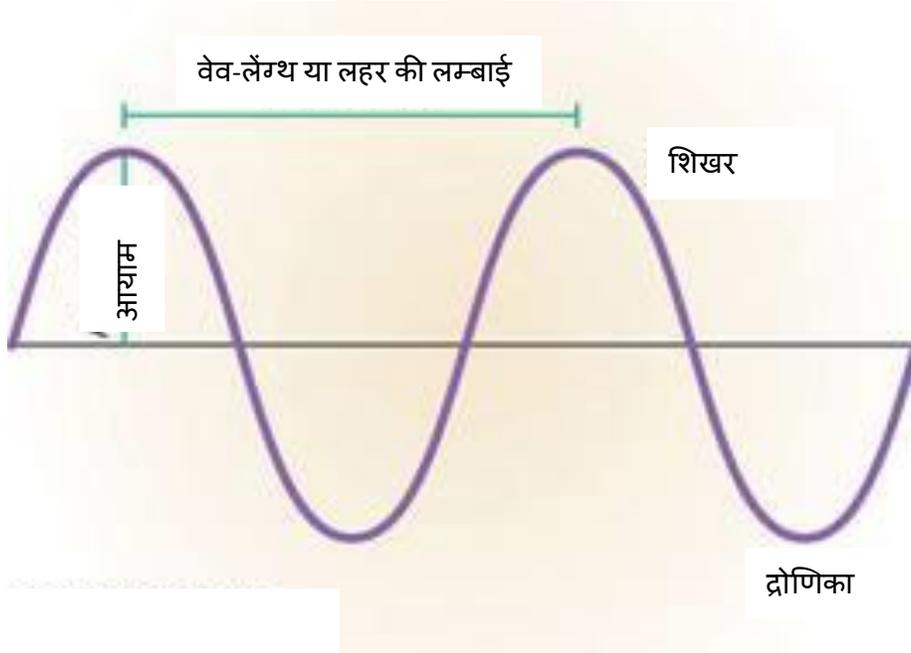
१८०१ में यंग ने प्रकाश के एक बीम को दो सकरी झिरियों से, जो एक दूसरे के पास थीं, भेजा. झिरियों से निकल कर प्रकाश के बीम थोड़े से फैल गये और दीवार पर पहुँचने पर एक दूसरे पर छा गये.

तुम सोच रहे होगे कि जहां प्रकाश के दो बीम एक दूसरे पर छायेंगे वहां चमक ज्यादा होगी, उसकी तुलना में जहां वो बीम एक दूसरे पर न छाये होंगे.

पर ऐसा नहीं हुआ. जहां प्रकाश के दो-बीम दीवार पर एक दूसरे पर छाये वहां एक के बाद एक प्रकाश और अँधेरे की पट्टियां बन गयीं. प्रकाश के बीम कुछ स्थानों पर एक दूसरे का साथ दे रहे थे और दूसरों पर एक दूसरे को काट रहे थे. ऐसा बारी-बारी से हो रहा था -- बिलकुल संगीत की थाप की तरह.
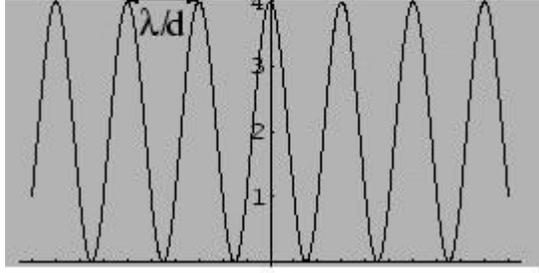
जब प्रकाश की दो किरणें एक-दूसरे को काट रहीं होती हैं तो हम उसे इंटरफेरेंस (हस्तक्षेप) कहते हैं. प्रकाश और अँधेरे की धारियों को इंटरफेरेंस फ्रिन्जें (हस्तक्षेप की झालर) कहा गया.

अब मसला सुलझ गया. हाइगेंज सही था और न्यूटन गलत. प्रकाश की किरणें नन्ही-नन्ही लहरों से बनी हैं. हस्तक्षेप की झालरकी चौड़ाई से थॉमस यंग, लहर की लम्बाई (वेवलेंग्थ) का भी पता लगा सका.
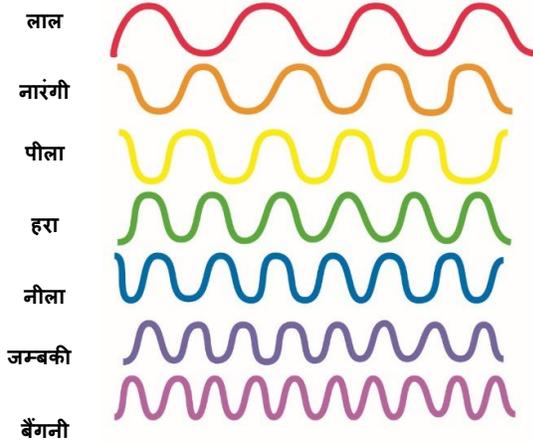
प्रकाश की लहरों की वेवलेंग्थ लगभग १/५०००० इंच निकली. इसका मतलब हुआ कि प्रकाश की एक इंच लम्बी किरण में ५०००० लहरें होंगी.

प्रकाश की सब किरणों की लम्बाई (वेवलेंग्थ) एक बराबर नहीं होती. लाल रंग के प्रकाश की लहरों की वेवलेंग्थ सबसे लम्बी और बैंगनी रंग के प्रकाश की सबसे छोटी. वेवलेंग्थ जितनी कम होगी, लहर उतनी ही ज्यादा मुड़ेगी (रिफ्रैक्ट होगी). प्रिज्म इसी तरह प्रकाश के रंगों को अलग करता है.

वर्ण-क्रम (स्पैक्ट्रम) के एक ओर लाल रंग है जिसकी वेवलेंग्थ १/३२००० इंच है. दूसरे अंत पर, बैंगनी रंग है जिसकी वेवलेंग्थ १/६४००० इंच है. अन्य रंगों की वेवलेंग्थ इन दोनों के बीच है और उनकी वेवलेंग्थ कम होती जाती है इस क्रम में: लाल, नारंगी, पीला, हरा, नीला, जम्बकी, बैंगनी.
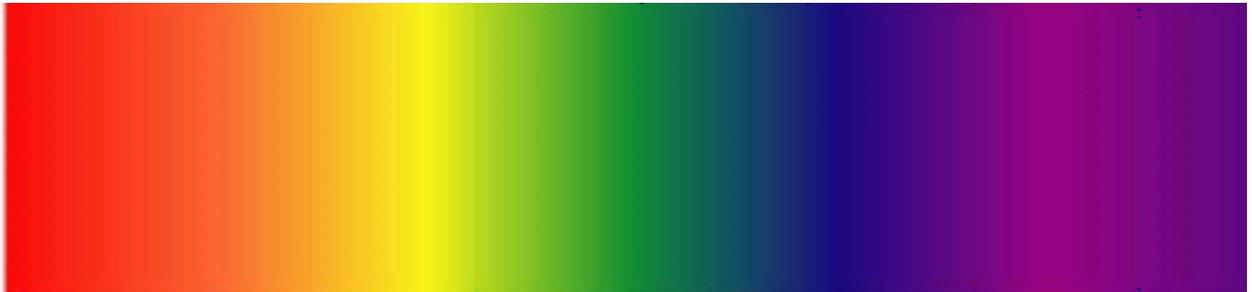
२. वर्ण-क्रम (स्पैक्ट्रम) कितना लम्बा है?

हमें प्रकाश और रंग क्यों दिखाई देते हैं?

आँख की पिछली सतह की झिल्ली को रैटिना कहते हैं. रैटिना में कई तरह के रसायन होते हैं. विभिन्न रसायन, प्रकाश के विभिन्न वेवलेंग्थों के रंगों की किरणों को सोखते (अब्जॉर्ब करते) हैं. जब रैटिना पर प्रकाश के सारे रंग पड़ते हैं तो रैटिना के सारे रसायन काम करते हैं, और हमें सामान्य प्रकाश -- सफेद रंग का दिखता है. जब प्रकाश की कुछ वेवलेंग्थ, दूसरे वेवलेंग्थों की तुलना में अधिक मात्रा में रैटिना तक पहुंचते हैं तो कुछ रसायन दूसरे रसायनों की तुलना में अधिक काम करने लगते हैं और हमें सिर्फ वेही रंग दिखाई देते हैं.
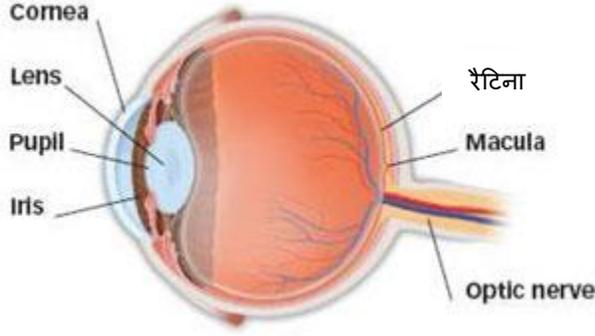
क्या ऐसा भी संभव है कि प्रकाश की कुछ वेवलेंग्थ किसी भी रसायन को प्रभावित न करें और हमें वे दिखाई ही न दें?

ऐसा लगा कि शायद यह संभव नहीं है. क्योंकि स्पैक्ट्रम में उपस्थित सभी वेवलेंग्थ हमें दिखाई देती हैं -- चाहे वो एक रंग हो या दूसरा.

लगता था कि मामला निबट गया था. बात तो यह है कि सन १८०० से पहले किसी ने इस सब के बारे में सोचा ही न था. अगर आप की आँखें ठीक-ठाक हैं तो प्रकाश वही है जो आपको दिखाई देता है. जो दिखाई न दे वह प्रकाश कैसा?

फिर जर्मन-ब्रिटिश वैज्ञानिक विलियम हर्शेल (William Herschel, १७३८-१८२२) के प्रयोगों में उसे कुछ अजूबा दिखाई दिया. वह एक जाना-माना खगोलशास्त्री था. उसने १७८१ में यूरेनस गृह का पता लगाया था. अच्छे वैज्ञानिकों को बहुत सारे विषयों में रुचि होती है. और हर्शेल, स्पैक्ट्रम में रुचि लेने लगा.

विलियम हर्शेल
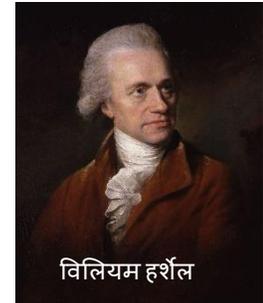
सूरज हमें दो चीजें देता है. प्रकाश, जिसे हम देख सकते हैं. और ताप, जिसे हम महसूस कर सकते हैं. सब जानते हैं कि रात में केवल अँधेरा ही नहीं होता, ठंडा भी हो जाता है. हर्शेल आश्चर्य कर रहा था -- क्या ताप प्रकाश के साथ-साथ
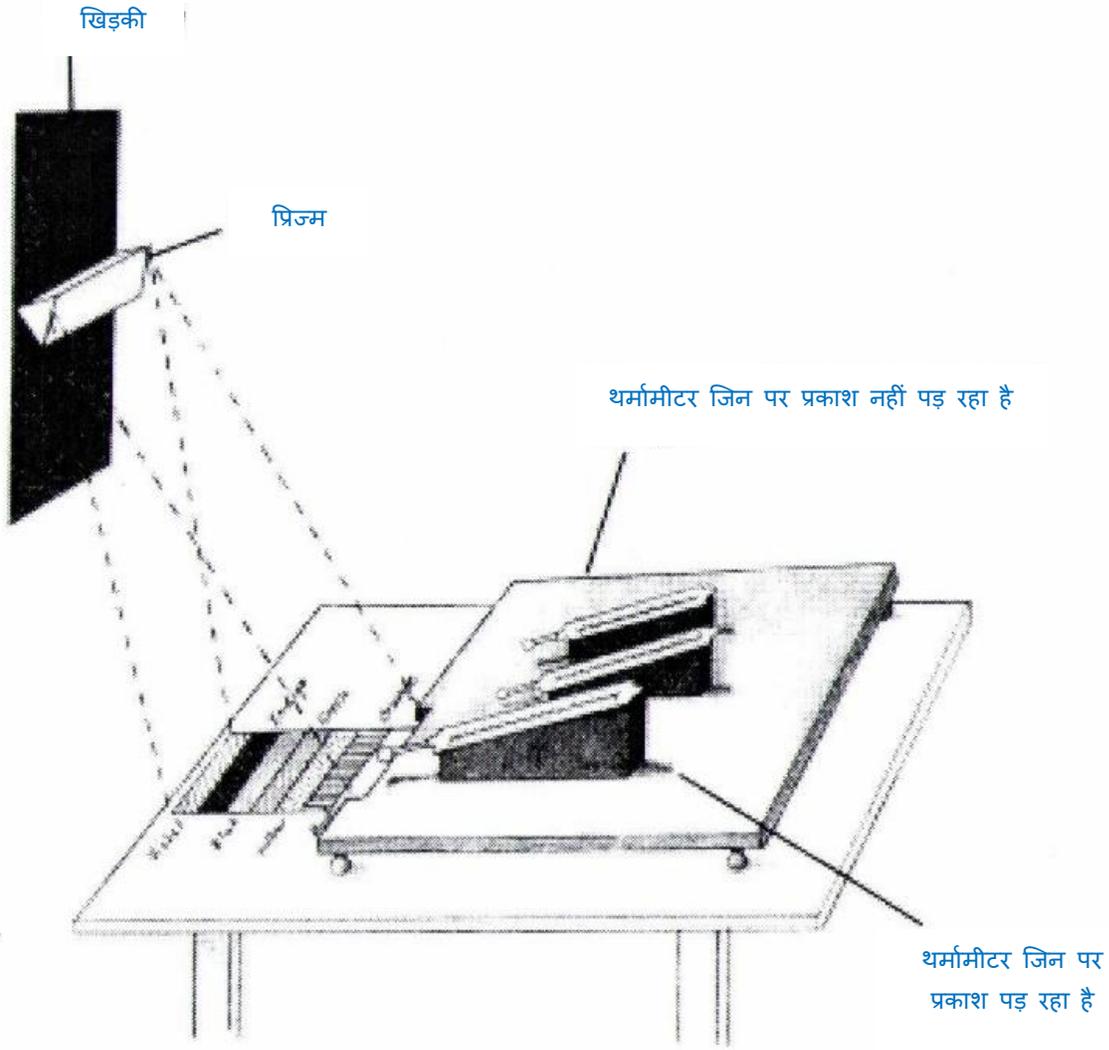
आता है? इसका पता लगाने का एक ही तरीका है -- स्पैक्ट्रम में थर्मामीटर-बल्ब को रख दिया जाय और देखा जाय कि क्या तापमान बढ़ता है.

तापमान बढ़ गया!

हर्शेल ने फिर सोचा -- **क्या स्पैक्ट्रम के विभिन्न हिस्सों में तापमान अलग-अलग मात्रा में बढ़ेगा?** उसने थर्मामीटर-बल्ब को बैंगनी रंग में रखा, फिर नीले हिस्से में, फिर हरे में ...... उसने पाया कि तापमान हर रंग में बढ़ा परन्तु जैसे जैसे वह लाल रंग के पास आता गया तापमान ज्यादा होता गया. लाल रंग में तापमान सब से अधिक था.

हर्शेल थोड़ा चकित था. वह सोच रहा था कि तापमान शायद स्पैक्ट्रम के बीच में सबसे अधिक होगा. पर ऐसा नहीं हुआ. फिर उसने सोचा कि अगर मैं थर्मामीटर को स्पैक्ट्रम के लाल रंग से थोड़ा आगे, जहां कोई प्रकाश नहीं है, रखूं तो क्या होगा? उसे आशा थी वहां तापमान बिलकुल नहीं बढ़ेगा.

वह फिर गलत साबित हुआ. वहां तापमान लाल रंग से भी ज्यादा था. ऐसा लगा जैसे सूर्य बिना प्रकाश के भी गर्मी पंहुचा रहा हो! हर्शेल ने सोचा, शायद सूर्य दो प्रकार की किरणें भेजता है -- प्रकाश की और ताप की. शायद दो तरह के स्पैक्ट्रम भी पैदा होते हैं -- प्रकाश का जो हमें दिखाई देता है और ताप का जो हमें दिखाई नहीं देता. ये दोनों स्पैक्ट्रम एक दूसरे पर छाये भी रहते हैं और किनारों पर अलग-अलग भी.

अगले साल, सन १८०१ में, जर्मनी के वैज्ञानिक जोहेन विल्हेल्म रिटर (Johann Wilhelm Ritter, १७७६-१८१०) ने एक नया प्रयोग किया.

प्रकाश जब सफेद रंग के एक विशेष रसायन पर, जिसमें चांदी घुली रहती है, पड़ता है तो चांदी के नन्हे कण नजर आने लगते हैं. चूंकि चांदी के नन्हे कण काले रंग के होते हैं, रसायन का रंग प्रकाश पड़ने पर काला दिखता है.

रिटर ने कागज की पट्टियों को रसायन में डुबाया और उन्हें स्पैक्ट्रम के विभिन्न हिस्सों में रखा. स्पैक्ट्रम के लाल रंग में रखी पट्टी काली नहीं पड़ी. बैंगनी रंग की ओर रखी पट्टियां काली होती चली गयीं. बैंगनी रंग में रखी पट्टी तो साधारण प्रकाश में रखी पट्टी से भी कहीं ज्यादा काली पड़ गयी.

चूंकि रिटर ने हर्शेल के प्रयोग के बारे में सुन रखा था, उसने रसायन में डूबे कागज की एक पट्टी बैंगनी रंग के परे भी रख दी. यह पट्टी बैंगनी रंग में रखी पट्टी से भी अधिक तेजी से काली पड़ गयी.

क्या ऐसा सम्भव है की सूर्य रासायनिक (केमिकल) किरणें भी भेजता है? तो क्या तीन तरह की किरणें निकलती हैं सूर्य से -- एक जो आँखों से दिखाई देतीं हैं, दूसरी जिसे थर्मामीटर से पता लगाया जा सकता है, और तीसरी जिसे रसायन द्वारा पता लगाया जा सकता है?

थॉमस यंग ने अपने प्रयोगों से यह सिद्ध कर दिया था कि प्रकाश की किरणें लहरों के रूप में हैं. उससे पहले सब कुछ बहुत ऊल-जुलूल लगता था.

उसके बाद यह स्पष्ट हो गया कि प्रकाश में लाल रंग की किरणों से भी बड़ी वेवलेंग्थ की लहरें हैं जिनसे रैटिना के रसायनों पर कोई असर नहीं होता -- यानि कि वो आँखों से दिखाई नहीं देतीं. उसी तरह प्रकाश में बैंगनी रंग की किरणों से भी छोटी वेवलेंग्थ की लहरें हैं जिनसे रैटिना के रसायनों पर कोई असर नहीं होता -- यानि कि वो आँखों से दिखाई नहीं देतीं.

इसका मतलब यह है कि हम स्पैक्ट्रम के लाल से बैंगनी रंग तक के ही हिस्से को देख सकते हैं. पूरा स्पैक्ट्रम तो लाल और बैंगनी रंग के परे तक फैलता है परन्तु उसकी सीमाएं हमें दिखाई नहीं देतीं.

अल्ट्रा-वायलेट विकिरण

इंफ्रा-रेड विकिरण

स्पैक्ट्रम का लाल रंग के परे का हिस्सा इंफ्रा-रेड विकिरण कहलाता है. इंफ्रा का लेटिन में अर्थ होता है, नीचे का हिस्सा. अगर आप स्पैक्ट्रम को ऊपर से नीचे की तरफ देखें जहां बैंगनी रंग ऊपर हो और लाल नीचे तो इंफ्रा-रेड लाल रंग के नीचे होगा.

स्पैक्ट्रम का बैंगनी रंग के ऊपर का हिस्सा अल्ट्रा-वायलेट विकिरण कहलाता है. अल्ट्रा का लेटिन में अर्थ होता है ऊपर या परे.

अगर हम इंफ्रा-रेड लहरों को देख नहीं सकते तो कैसे कह सकते हैं कि यह साधारण प्रकाश की ही तरह है -- सिर्फ इनकी वेवलेंग्थ लाल रंग के प्रकाश से ज्यादा है?

सन १८३० में थर्मोपाइल यंत्र का प्रयोग तापमान नापने के लिये किया गया. थर्मोपाइल में दो विभिन्न धातुओं की पत्तिओं की कतार होती है. अगर इसके एक सिरे को गर्म किया जाय तो इसमें विध्युत पैदा होगी. हल्की सी भी विध्युत को आसानी से नापा जा सकता है. और इस तरह तापमान में अगर थोड़ा सा भी फर्क हो तो इसका पता लगाया जा सकता है.

इटली के वैज्ञानिक मैसीडोनिओ मैलोहनी (Macedonio Melloni, १७९८-१८५४) ने थर्मोपाइल में सुधार किया जिससे वह इंफ्रा-रेड विकिरण का अध्ययन कर सके. चूंकि इंफ्रा-रेड लहरें, साधारण प्रकाश की तरह, शीशे के पार आसानी से नहीं जा सकतीं, उसने पथरीले नमक के प्रिज्म और लेंस बनाये जिनमेंसे इंफ्रा-रेड लहरें आसानी से गुजर सकें.
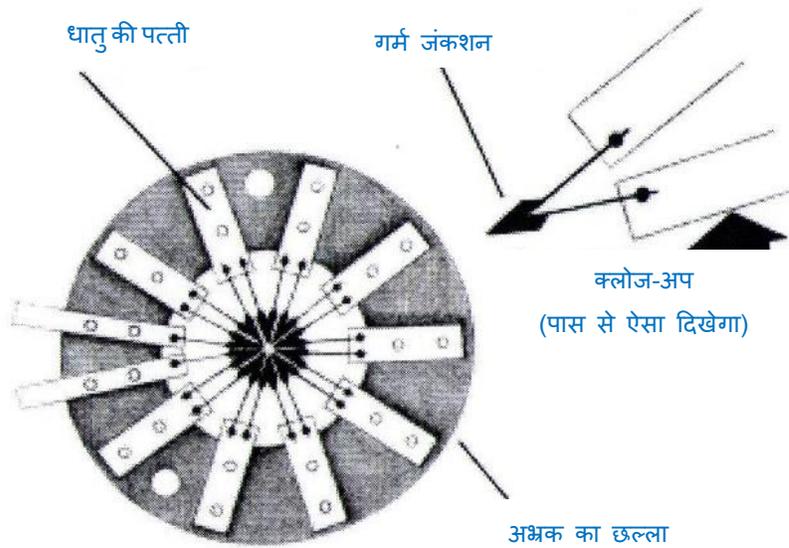
थर्मोपाइल यंत्र

सन १८५० में वह यह दिखा सका कि इंफ्रा-रेड लहरें साधारण प्रकाश की तरह ही हैं. इंफ्रा-रेड लहरें प्रतिबिंबित (रिफ्लेक्ट) और अपने मार्ग से मुड़ सकती (रिफ्रैक्ट) हैं. अगर हम इंफ्रा-रेड प्रकाश की दो किरणों को लें तो उनके बीच पैदा हुए इंटरफेरेंस फ्रिन्जें (हस्तक्षेप की झालर) भी देख सकते हैं.

यह मसला इस तरह हल हुआ.

आखिर स्पैक्ट्रम कितना बड़ा है? क्या इंफ्रा-रेड और अल्ट्रा-वायलेट के परे भी कुछ है?

इसका जवाब दिया ब्रिटेन के वैज्ञानिक जेम्स क्लर्क मैक्सवैल (James Clerk Maxwell, १८३१-१८७९) ने. वास्तव में मैक्सवैल की रुचि विध्युत और चुम्बकत्व में थी जो उसे प्रकाश के अध्ययन तक ले आई.

विध्युत और चुम्बकत्व का मामूली ज्ञान प्राचीन ग्रीक निवासियों को भी था. परन्तु केवल उन्नीसवीं सदी में ही वैज्ञानिक यह पता लगा पाये कि विध्युत को किस प्रकार तारों द्वारा एक जगह से दूसरी जगह प्रवाहित किया जा सकता है. (पढ़िये आइज़क एसिमोव की पुस्तक "हमें बिजली के बारे में कैसे पता लगा").
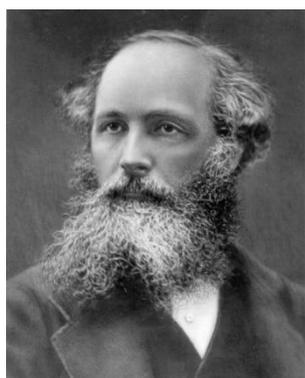
जेम्स क्लर्क मैक्सवैल

१८२० में यह पता लगा कि अगर तार में विध्युत प्रवाहित की जाय तो वह चुम्बक की तरह काम करता है. और तो और, अगर एक चुम्बक को तार की कॉइल से निकाला जाय तो तार में विध्युत प्रवाह होने लगती है.

हालाँकि विध्युत और चुम्बकत्व अलग चीजें हैं -- पर अब ऐसा लगने लगा था कि इनका एक दूसरे से गहरा सम्बन्ध है. मैक्सवैल की रुचि इस सम्बन्ध के अध्ययन में हो गयी.

उसने लगभग ९-साल तक इस समस्या पर काम किया और १८७३ में चार सरल नियम निकाले. ये चार नियम मैक्सवैल समीकरण के नाम से जाने जाते हैं और ये विध्युत और चुम्बकत्व के सारे सम्बन्धों को समझाने में सफल हुए.

अगर मैक्सवैल के समीकरण सही हैं तो विध्युत के बिना चुम्बकत्व और चुम्बकत्व के बिना विध्युत का होना असम्भव है. वास्तव में ये दो चीज मिल कर एक चीज बनाती हैं जिसे विध्युतीय-चुम्बकत्व (इलेक्ट्रोमैग्नेटिज्म, electromagnetism) कहते हैं.

मैक्सवैल ने दर्शाया कि विध्युत से चुम्बकत्व पैदा होता है और फिर चुम्बकत्व से विध्युत जो फिर चुम्बकत्व पैदा करेगा औए इस तरह यह सिल-सिला चलता रहेगा और विध्युतीय-चुम्बकत्व बाहर की ओर सब दिशाओं में फैलता जायगा. इसे विध्युत-चुम्बकीय विकिरण (इलेक्ट्रो-मैगनेटिक रैडिएशन, electro-magnetic radiation) कहा गया.

अपने समीकरणों से मैक्सवैल यह पता लगा सका कि विध्युत-चुम्बकीय विकिरण कितनी तेजी से आगे बढ़ेगा. यह गति बहुत तीव्र थी -- १८६३०० मील प्रति सैकिण्ड. संयोग की बात है कि यह प्रकाश की गति के बराबर ही थी! इस कारण से मैक्सवैल ने सोचा कि प्रकाश विध्युत-चुम्बकीय विकिरण ही है.

परन्तु प्रकाश की लहरों की अलग-अलग वेवलेंग्थ क्यों होती है?

जब बिजली के चार्ज वाली चीज आगे-पीछे हिलती है (oscillate, ऑसिलेट, कंपित होती है) तो उसमें से विध्युत-चुम्बकीय लहरें पैदा होती हैं. जब भी वह आगे-पीछे हिलती है, एक लहर पैदा होती है. मानलीजिये वह एक सैकिण्ड में

६० ट्रिलिअन बार आगे-पीछे होती है. इसका मतलब हुआ कि विकिरण एक सैकिण्ड में १८६००० मील चल चुकेगा और उसमें ६० ट्रिलिअन लहरें होंगी. हर लहर १/५०००० इंच लम्बी होगी. यह आँखों से दिखने वाले प्रकाश की किरणों की वेवलेंग्थ है.

मैक्सवैल के समय पर इसका ज्ञान न था कि परमाणु में अगर कुछ है तो क्या है. अब हमें मालूम है कि परमाणु में बिजली के चार्ज मौजूद हैं और वो कंपन द्वारा प्रकाश पैदा करते हैं. अलग-अलग तरह के परमाणु अलग गति से कंपित होते हैं और अलग वेवलेंग्थ का प्रकाश पैदा करते हैं.

मैक्सवैल ने ध्यान दिलाया कि उसके समीकरणों में ऐसा कुछ नहीं है जो कहे कि बिजली से चार्ज चीजें सब एक ही गति से कंपित हों. वे इतनी तेजी से भी कंपित हो सकती हैं कि उनकी वेवलेंग्थ अल्ट्रा-वायलेट से भी कम हो. या फिर इतनी धीरे से कंपित हो सकती हैं कि उनकी वेवलेंग्थ इंफ्रा-रेड से भी अधिक हो.

३. रेडियो-वेव और माइक्रोवेव

वैज्ञानिक सिर्फ इतने से ही संतुष्ट नहीं होते कि गणित कहता है कि ऐसा होना चाहिये. गणित तो सिर्फ बताता है कि उन्हें खोजना क्या है. उसके बाद शुरू हो जाती है सचमुच खोज.

मैक्सवैल के समीकरणों ने यह बताया कि ऐसे विध्युत-चुम्बकीय विकिरण पाये जा सकते हैं जिनकी वेवलेंग्थ इंफ्रा-रेड और अल्ट्रा-वायलेट के परे हो. अब बाकी रह गया उनका सचमुच में पता लगाना.

जर्मनी का हाइनरिक रूडोल्फ हर्ट्ज़ (Heinrich Rudolf Hertz, १८५७-१८९४) पहला वैज्ञानिक था जिसने इनका पता लगाया. सन १८८८ में हर्ट्ज़ ने एक बिजली का सर्किट बनाया जो तेजी से कंपन (oscillate, ऑसिलेट) करता है. सर्किट के लिये उसने दो धातु के गोले लिये और उन्हें एक दूसरे के इतना पास रखा कि वे छू न पायें और थोड़ा सा गैप बना रहे. फिर बिजली एक गोले में गई. जब उसने दिशा बदली तो वह दूसरे गोले में गई. फिर जब दिशा बदली तो बिजली पहले गोले में गई .... और इस तरह गोलों के बीच वाले गैप में चिंगारी चमकती-बुझती रही.

हाइनरिक रूडोल्फ हर्ट्ज़

हर्ट्ज़ ने सोचा कि अगर मैक्सवैल सही है तो बिजली के कंपन द्वारा विध्युत-चुम्बकीय विकिरण पैदा होना चाहिये. इस विकिरण की वेवलेंग्थ इंफ्रा-रेड किरणों से अधिक होनी चाहिये. पर वह कैसे सिद्ध करे कि वास्तव में ऐसा ही है.

विध्युत-चुम्बकीय विकिरण का पता लगाने लिये हर्ट्ज़ ने एक तार का छल्ला बनाया जिसके सिरे पर छोटा सा गैप था. उसका सोचना था, जिस तरह कंपित बिजली की करेंट से विकिरण पैदा होता है, अगर विकिरण मौजूद है तो उसे छल्ले में बिजली की करेंट पैदा करनी चाहिये.

ऐसा ही हुआ! हर्ट्ज़ ने छल्ले के गैप में चिंगारी देखी. हर्ट्ज़ छल्ले को कमरे में एक जगह से दूसरी जगह ले गया. चाहे छल्ला लहर के पास हो या दूर, छल्ले के गैप में चिंगारी नजर आई. लहर के बीच में चिंगारी नजर नहीं आई. इस तरह वह कह सका कि कंपित करेंट से पैदा हुए विकिरण की वेवलेंग्थ २.२ फुट थी -- प्रकाश की वेवलेंग्थ से करोणों गुना ज्यादा.

विध्युत-चुम्बकीय विकिरण (इलेक्ट्रो-मैगनेटिक रैडिएशन) की इन लम्बी वेवलेंग्थों वाली लहरों को हर्ट्ज़ की लहरें कहा गया. बाद में इन्हें रेडियो-वेव का नाम दिया गया.

इंफ्रा-रेड वेवों की वेवलेंग्थ जैसे-जैसे बढ़ती जाती हैं, वे रेडियो-वेव बन जाती हैं. इंफ्रा-रेड और रेडियो-वेव में कोई स्पष्ट विभाजन नहीं है. सुविधा के लिए वैज्ञानिक १/२५ इंच को विभाजन रेखा मानते हैं. १/२५ इंच से कम वेवलेंग्थ वाली लहरों को इंफ्रा-रेड लहर कहते हैं (इससे कम वेवलेंग्थ होने पर वे साधारण प्रकाश
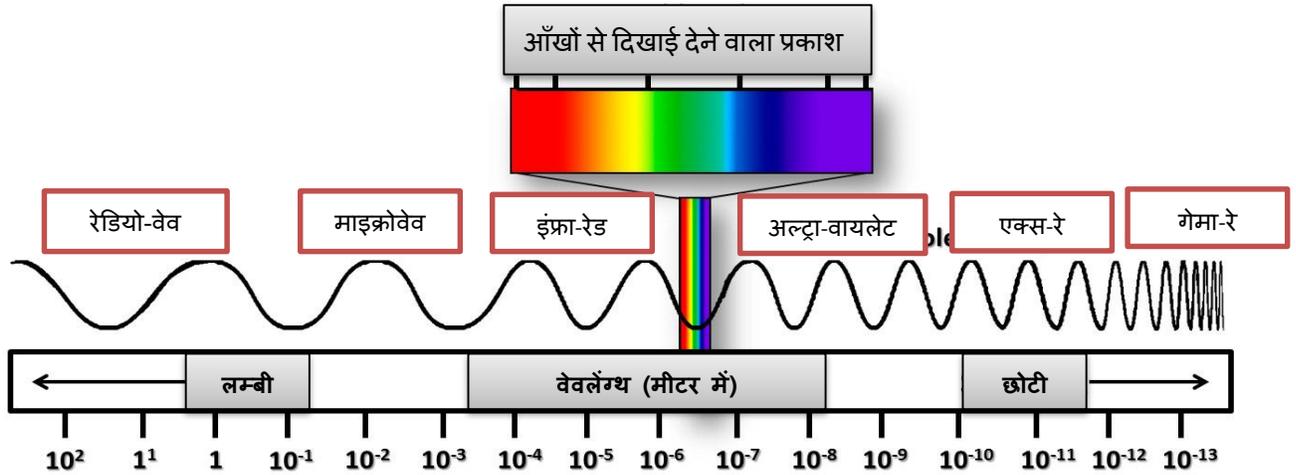
की लहरें बन जाती हैं). १/२५ इंच से अधिक वेवलेंग्थ की लहरें रेडियो-वेव कहलाती हैं. रेडियो-वेव की वेवलेंग्थ कुछ इंच, कुछ गज, या फिर कई मील भी हो सकती है. रेडियो-वेव को आप चाहें तो लम्बी-लहर (लोंग-वेव), छोटी-लहर (शार्ट-वेव), या अत्यंत छोटी-लहर (वेरी-शार्ट-वेव) में बाँट सकते हैं. अत्यंत छोटी-लहर वाली रेडियो-वेव को माइक्रोवेव कहा जाता है -- ग्रीक में माइक्रो का अर्थ है 'बहुत-छोटा'.

माइक्रोवेव की वेवलेंग्थ १/२५ इंच से लेकर ६ १/४ इंच तक हो सकती हैं.

जब वैज्ञानिकों को रेडियो-वेव के बारे में पता लगा, वे सोचने लगे क्या इन लहरों का प्रयोग कर हम दूर-भाष (टैलीग्राफ) सिगनल भेज सकते हैं? पिछले पचास सालों में लोग टैलीग्राफ द्वारा संदेश भेजते आरहे थे. इसके लिये एक जगह से दूसरी जगह खम्बों पर तारों को लगाना और समुद्र की सतह पर केबिल को बिछाना पड़ता है.

अगर रेडियो-वेव द्वारा संदेश भेजा जा सके तो हमें महंगे तारों और केबिल पर पैसा खर्च न करना पड़ेगा.

१८९० में फ़्रांस के वैज्ञानिक एडुआर्ड ब्रैनली (Edouard Branly, १८४४-१९४०) ने हर्ट्ज से भी अधिक शक्तिशाली वेव पता लगाने का यंत्र ढूंढ़ निकाला. उसके यंत्र से १५० गज की दूरी पर रेडियो-वेव का पता चल सका. ब्रिटेन के वैज्ञानिक ऑलिवर जौसेफ लौज (Oliver Joseph Lodge, १८५१-१९४०) ने ब्रैनली के यंत्र को सुधारा और वह रेडियो-वेव को आधे-मील की दूरी पर पता लगा सका. वह रेडियो-वेव को डाट-और-डैश के रूप में भेज सका और मोर्स कोड से संदेश प्रसारित कर सका.

सबसे अधिक सफलता मिली इटली के वैज्ञानिक गुगलीलमो मार्कोनी (Guglielmo Marconi, १८७४-१९३७) को. उसने खोज निकाला कि एण्टीना के प्रयोग से वह संदेश-सिगनल बहुत दूर तक भेज और पा सकता है. सन १८९६ तक मार्कोनी नौ मील दूर तक के सिगनल का पता लगा पाया. क्या वह इससे भी दूर के सिगनल का पता लगा सकता है? आखिर रेडियो-वेव एक सीधी रेखा में चलती है परन्तु पृथ्वी का ग्लोब नीचे की ओर मुड़ता है. अतः नौ मील चलने के बाद रेडियो-वेव को बादलों के पार आगे बढ़ते हुए अंतरिक्ष में पहुंच जाना चाहिये.

गुगलीलमो मार्कोनी

भाग्यवश, वायुमण्डल में बहुत ऊपर विध्युत से चार्ज कणों की एक सतह होती है. चार्ज कणों को आयन कहते हैं. और इस सतह को आयनमण्डल (आयनोस्फीयर, ionosphere). आयनमण्डल रेडियो-वेवों को वापस फैंक (रिफ्लेक्ट कर) देता है. इस तरह रेडियो-वेव पृथ्वी और आयनमण्डल के बीच टकराकर ग्लोब के गोल किनारे से निकल सकती हैं.

सन १९०२ में मार्कोनी इंग्लैंड के दक्षिण-पश्चिमी कोने पर गया. वहां उसने गुब्बारे से चढ़कर आसमान से रेडियो-वेव सिगनल भेजे. उन सिगनलों का अटलांटिक सागर के दूसरी तरफ न्यूफाउंडलैंड में पता लगा. इस तरह मार्कोनी, बिना किसी केबिल के, समुद्रपार सिर्फ विकिरण द्वारा संदेश का सिगनल भेजने में सफल हुआ. इस कारण मार्कोनी को रेडियो टेलीग्राफी (संछिप्त रूप रेडियो) का आविष्कारक माना जाता है.

कुछ साल बाद कैनेडियन-अमरीकी वैज्ञानिक रेजीनॉल्ड ऑब्रे फेसेन्डन (Reginald Aubrey Fessenden, १८६६-१९३२) रेडियो-वेव को ध्वनि की लहरों में बदलने में सफल हुआ. इस तरह एक सिरे पर ध्वनि की लहरों को रेडियो-वेव में बदला जा सका और दूसरे सिरे पर रेडियो-वेव को फिर से ध्वनि की लहरों में. इस तरह रेडियो से आवाज और संगीत सुना जा सका. दिसंबर २४, १९०६ को पहली बार रेडियो पर संगीत सुना गया. फिर अनेक सुधारों के बाद आधुनिक रेडियो और टीवी का जन्म हुआ.

बहुत छोटी वेवलेंग्थ वाली रेडियो-वेव जिन्हें माइक्रोवेव कहते हैं का १९३० तक कोई खास उपयोग महसूस नहीं हुआ. फिर प्रश्न उठा -- विकिरण के जरिये दूर-दराज रखी चीजों का पता कैसा लगाया जाय?

यह कोई नई बात नहीं कि हम विकिरण का प्रयोग वस्तुओं के ज्ञान के लिये करते हैं. हम दूर स्थित वस्तुओं से प्रतिबिंबित प्रकाश के अध्ययन से पता लगा सकते हैं कि उसका आकार, रंग, और दूरी कितनी है.

हमें समुद्र के अंदर की चीजें दिखाई नहीं देतीं क्योंकि प्रकाश बहुत गहरे पानी में नहीं घुस पाता. हालाँकि, ध्वनि की लहरें पानी में घुस सकतीं हैं. परंतु इनकी वेवलेंग्थ इतनी अधिक होती है कि ये पानी में पड़ी छोटी वस्तुओं से टकराकर वापस नहीं आतीं बल्कि मुड़ जाती हैं.

मानलीजिये आप बहुत छोटी वेवलेंग्थ की ध्वनि की लहरों का प्रयोग करें -- ध्वनि की लहरें जिन्हें आप सुन न सकें. ऐसी लहरों को अल्ट्रा-सौनिक (लैटिन जिसका अर्थ है ध्वनि से परे) कहते हैं.

१९१७ में फ्रांस का वैज्ञानिक पॉल लैहंजवैन (Paul Langevin, १८७२-१९४६) एक ऐसा तरीका ढूंढ़ पाया जिससे वह समुद्र में अल्ट्रा-सौनिक लहरों की पल्स भेज कर उनके प्रतिबिम्ब का पता लगा सके. प्रतिबिम्ब के अध्ययन से वह उस वस्तु का आकार और परिमाण का पता लगा सका जिससे टकराकर अल्ट्रा-सौनिक लहरें लौट कर वापस आयीं हैं. पल्स को जाकर वापस आने के समय से वस्तु की दूरी की गणना की जा सकती है. इस सिस्टम को सोनार (SONAR) कहते हैं जो संक्षिप्त है साउंड नैविगेशन एंड रेन्जिंग (SONAR -- **So**und **N**avigation **a**nd **R**anging) का. जहां रेन्जिंग (Ranging) का अर्थ है दूरी बताना.

प्रथम विश्व-युद्ध में लैहंजवैन ने जर्मनी की पनडुब्बियों का पता लगाने के लिये सोनार पर काम किया. परन्तु जब तक सोनार पूरी तरह काम करने योग्य हो सके जर्मनी हार चुका था और युद्ध खत्म हो गया. युद्ध के बाद सोनार का प्रयोग समुद्र के पैंदे का अध्ययन करने के लिये किया गया.

१९३० में ऐसा लग रहा था कि जर्मनी से फिर युद्ध होगा. पर इस बार खतरा हवाई जहाजों से था. अब आवश्यकता थी यह जानने की कि क्या हवाई जहाज रात में या बादलों में छुपे तुम्हारी तरफ आ रहे हैं? सोनार की गति इस काम के लिये बहुत कम थी और इस लिये उसका उपयोग बेकार था.

विध्युत-चुम्बकीय विकिरण (इलेक्ट्रो-मैगनेटिक रैडिएशन) की आवश्यकता थी जो प्रकाश की गति से चले. विकिरण की वेवलेंग्थ भी अधिक नहीं होनी चाहिये वरना वह हवाई जहाज से टकराकर वापस नहीं आयेगा. और वेवलेंग्थ इतनी कम भी नहीं होनी चाहिये कि वह वायुमण्डल को चीरता हुआ हवाई जहाज तक भी न पहुँच सके -- विशेष कर जबकि कोहरा, बादल, या धुंध छायी हो.

इस काम के लिये सही पायी गईं माइक्रोवेव -- इनकी वेवलेंग्थ न ज्यादा बड़ी न ज्यादा छोटी.

अब वैज्ञानिकों को ऐसा उपाय ढूंढ़ना था कि वे माइक्रोवेव की पल्स भेज सकें जो हवाई जहाज से टकराकर वापस आये. उन्हें यह भी नापना था कि पल्स को जाकर वापस आने में कितना समय लगता है -- जो कि एक सैकिण्ड का बहुत छोटा सा अंश ही होगा. समय की जानकारी से ही विमान की दूरी का पता लगाया जा सकता है.
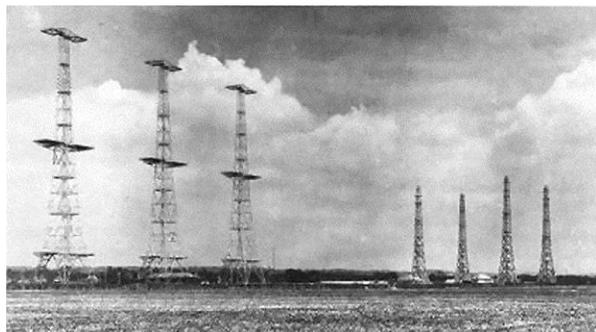
दि्वतीय विश्व-युद्ध में समुद्र-किनारे लगे राडार स्टेशन

१९३५ तक ब्रिटिश वैज्ञानिक रॉबर्ट अलैक्जेंडर वाटसन-वाट (Robert Alexander Watson-Watt, १८९२-१९७३) ने एक यंत्र बना डाला. उसका यंत्र ध्वनि की लहरों के बजाय अति-सूक्ष्म रेडियो-वेव का प्रयोग के कारण राडार (RADAR -- **R**adio **D**etection **a**nd **R**anging) कहलाया.

युद्ध १९३९ में शुरू हुआ. १९४० में जर्मनी के हवाई जहाजों के जत्थे के जत्थे ब्रिटेन पर हमला करने के लिये चल पड़े. इसे ब्रिटेन का युद्ध कहा गया. हालाँकि जर्मनी के पास बहुत सारे हवाई जहाज थे, परन्तु ब्रिटेन के पास राडार था जिससे यह पता लगता रहता था कि जर्मनी के जहाज कब आ रहे हैं और कहां हैं. अंत में, प्रथम विश्व-युद्ध की तरह, दूसरे विश्व-युद्ध में भी जर्मनी की हार हुई.

दि्वतीय विश्व-युद्ध के बाद, राडार और माइक्रोवेव का दिन प्रतिदिन के कामों में उपयोग होने लगा. राडार दि्वारा पुलिस गति सीमा का उलंघन करने वाले ड्राइवरों को पकड़ सकती है. राडार दि्वारा एयरपोर्ट विमानों का उड़ान के समय अता-पता लगा सकते हैं. इस सूचना से विमानों के भू-पट्टी से उड़ने और उतरने का समय निश्चित किया जा सकता है और विमानों को एक-दूसरे से टकराने से रोका जा सकता है.

घरों में भी माइक्रोवेव का इस्तेमाल शुरू हो गया. खाना बनाने के लिये घर में आग की लौ या बिजली की कौइल का चूल्हा इस्तेमाल किया जाता है. इन तरीकों से अत्यधिक मात्रा में इंफ्रा-रेड विकिरण पैदा होता है और इस तरह जिस वस्तु को गरम किया जा रहा है उसमें ताप पहुँचता है.

इंफ्रा-रेड विकिरण खाने में बहुत अंदर तक नहीं पहुँचता -- सिर्फ बाहरी सतह तक रहता है. धीरे-धीरे बाहरी सतह की गर्मी अंदर पहुँचती है और इस तरह चीजें गर्म होती हैं.

परन्तु माइक्रोवेव, जिनकी वेवलेंग्थ इंफ्रारेड से बड़ी हैं, पदार्थों में अंदर तक घुस सकती हैं. इस तरह ये अंदर घुस कर सब तरफ गर्मी फैलाती हैं -- सिर्फ सतह पर नहीं. बहुत सारे घरों में अब माइक्रोवेव द्वारा खाना जल्दी से पकाया जाने लगा है. यहाँ तक कि, बाजार में माइक्रोवेव से गर्म करने वाला स्पेशल खाना भी मिलने लगा जिसे सीधा गर्म करो और खाओ!

४. गृह और माइक्रोवेव

द्वितीय विश्व-युद्ध के बाद, राडार का प्रयोग वैज्ञानिक कामों में भी लिया जाने लगा. उदाहरण के तौर पर, जैसे राडार की माइक्रोवेव विमान से टकराकर वापस आ सकतीं हैं, वे उल्कापिंडों (मीटिओराइट्स, meteorites) से भी टकराकर वापस आ सकती हैं. सामान्य तौर पर हम उल्कापिंडों (मीटिओराइट्स) को रात में ही देख सकते हैं जब वे दहक कर सफेद रंग के होते हैं और वायुमण्डल से गुजर रहे होते हें. रात में हमें वे टूटे तारों जैसे दिखते हें. दिन में अन्य तारों की तरह ये भी अद्रश्य हो जाते हैं. राडार द्वारा उल्कापिंडों (मीटिओराइट्स) का पता हमें रात और दिन दोनों में लग सकता है.
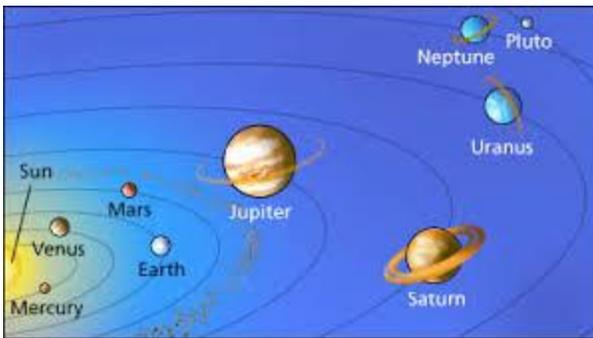
हम और भी दूर की चीजों का पता लगा सकते हें. १९४६ में राडार-बीम चन्द्रमा की और फेंका गया और उससे टकराकर वापस आया. कुछ वर्षों बाद, राडार-बीम शुक्र (वीनस Venus), बुद्ध (मर्करी Mercury), मंगल (मार्स Mars), और बृहस्पति (जुपिटर Jupiter) गृहों पर फेंके गये और उनसे टकराकर वापस आये. और तो और, सूर्य पर भी राडार-बीम फेंका गया और उससे टकराकर वापस आ चुका है.

इन सब प्रयोगों का बहुत महत्व है. जितना समय राडार-बीम को जाने और गृहों से टकराकर वापस आने में लगता है उससे उनकी पृथ्वी से दूरी की गणना की जा सकती है. दूरी नापने का यह तरीका उस समय के अन्य सभी तरीकों से अच्छा था.

जब कोई छोटा गृह, बड़े के चारों तरफ चक्कर लगाता है तो बड़ा गृह छोटे पर ज्वार-भाटा-सा (टाइड tide) पैदा कर देता है. ज्वार-भाटा द्वारा उतपन्न घर्षण के कारण छोटे गृह के अपनी धुरी पर घूमने की गति मंद हो जाती है. फलतः बड़े गृह के चारों तरफ चक्कर लगाते समय छोटे गृह का केवल एक तरफ का हिस्सा ही बड़े गृह की ओर रहता है. इसलिये जब चन्द्रमा पृथ्वी का चक्कर लगाता है तो उसका एक ही चेहरा पृथ्वी की ओर रहता है.

खगोलशास्त्रियों (ऐस्ट्रोनॉमर्स astronomers) का वर्षों तक यह सोचना था कि जब बुद्ध (Mercury) गृह सूर्य का चक्कर लगाता है तो उसका एक तरफ का ही चेहरा सूर्य की तरफ रहता है, वो बहुत गर्म होगा और दूसरी तरफ का हिस्सा जो अँधेरे में है, बहुत ठंडा. क्या हम सिद्ध कर सकते हैं कि वास्तव में ऐसा ही है? हर वस्तु विध्युत-चुम्बकीय विकिरण (इलेक्ट्रो-मैगनेटिक रैडिएशन) निकालता है. वस्तु जितनी ज्यादा गर्म होगी, उससे निकले विकिरण की वेवलेंग्थ उतनी ही छोटी होगी. वस्तु को अत्यधिक गर्म होना होगा तभी उसमें से निकले विकिरण को हम देख सकेंगे. ठण्डी वस्तुओं से निकले विकिरण की वेवलेंग्थ बड़ी होती हैं जिसे हम माइक्रोवेव की तरह देख नहीं पाते.

१९६२ में खगोलशास्त्रियों (ऐस्ट्रोनॉमर्स) ने बुद्ध गृह (मर्करी Mercury) की अंधेरी सतह से निकली माइक्रोवेवों का पता लगाया. इन माइक्रोवेवों की वेवलेंग्थ इतनी छोटी थी और ये इतनी अधिक मात्रा में मौजूद थीं कि यह सिद्ध हुआ कि बुद्ध गृह का अँधेरे वाला हिस्सा जितना सोचा था उससे कहीं ज्यादा गर्म है. इसका मतलब है कि बुद्ध गृह के इस हिस्से को सूर्य कभी न कभी गर्म करता होगा.

खगोलशास्त्रियों (ऐस्ट्रोनॉमर्स) ने माइक्रोवेव-बीम को बुद्ध गृह (मर्करी Mercury) की ओर फेंका और टकराकर वापस आयी माइक्रोवेव का अध्ययन किया. अगर बुद्ध गृह अपनी धुरी पर घूम रहा है तो वापस आने वाली माइक्रोवेव में कुछ तो बदलाव आना चाहिये. बदलाव की मात्रा से यह पता लगाया जा सकता है कि बुद्ध गृह किस गति से अपनी धुरी पर घूम रहा है.

इस अध्ययन से यह जानकारी मिली कि बुद्ध गृह अपनी धुरी पर ८८ दिन में एक चक्कर लगाता है और इतने ही दिनों में वह सूर्य का भी एक चक्कर पूरा करता है. इसका मतलब हुआ कि बुद्ध गृह का एक ही हिस्सा हमेशा सूर्य की तरफ रहेगा.

१९६५ में वैज्ञानिकों ने माइक्रोवेव द्वारा यह खोज निकाला कि बुद्ध गृह वास्तव में अपनी धुरी पर ५८ १/२ दिन में एक चक्कर पूरा करता है -- जो कि सूर्य के चारों तरफ चक्कर लगाने की गति से कम है. इस कारण से बुद्ध गृह के हर हिस्से पर कभी न कभी सूर्य का प्रकाश पड़ेगा.

शुक्र गृह (वीनस Venus) और भी विचित्र निकला. यह बुद्ध गृह की तुलना में बड़ा और हमारे नजदीक भी. इस कारण वैज्ञानिक इसके अँधेरे हिस्से का अध्ययन, बुद्ध गृह की तुलना में अच्छे से कर पाये.

१९५६ में शुक्र गृह (वीनस Venus) से इतनी अधिक मात्रा में माइक्रोवेव मिलीं कि उससे लगा कि शुक्र गृह सचमुच बहुत गर्म है. शुक्र गृह पर गहरा वायुमण्डल है और बुद्ध गृह पर बिलकुल नहीं. शायद शुक्र गृह पर गहरे बादल गर्म हों और उनके नीचे ठोस सतह ठण्डी.

१९६२ में अमरीकी अनुसंधान रॉकेट मैरीनर-२ (Mariner-2) शुक्र गृह के पास से गुजरा और उससे निकली माइक्रोवेवों को नापा. अब कोई प्रश्न बाकी न रहा. शुक्र गृह की सतह हर जगह गर्म थी -- इतनी गर्म कि टिन और पारा भी पिघल जाय.

मैरीनर-२

शुक्र गृह पर घने बादलों से वैज्ञानिकों का अनुमान था कि इस गृह पर बहुत दल-दल होगी और यह हल्का सा गर्म होगा. परन्तु माइक्रोवेवों के अध्ययन से पता लगा कि शुक्र गृह रहने के लिहाज से बहुत गर्म है और इसकी सतह एक दम सूखी. चूंकि शुक्र गृह पर बादल इतने घने हैं और सब जगह मौजूद हैं कि खगोलशास्त्री इसकी सतह देख ही नहीं पाये. सतह न दिखने के कारण, किसी चिन्ह को स्थापित नहीं किया जा सका जिससे गृह के घूमने की गति का पता लगाया जा सके.

कुछ वैज्ञानिकों ने सोचा कि पृथ्वी और मंगल गृह की तरह शुक्र गृह भी २४-घण्टे में एक चक्कर लगाता है. कुछ ने सोचा कि इसे २२५ दिन लगते हैं -- उतना ही समय जितना इसे सूर्य के चारों ओर लगाने में लगता है. इस कारण इसकी एक ही सतह सूर्य की ओर रहती है.

दोनों बातें गलत साबित हुईं. माइक्रोवेव के अध्ययन से १९६२ में पता लगा कि शुक्र गृह अपनी धुरी पर २४३ दिनों में चक्कर लगाता है और सूर्य का चक्कर २२४ में. जिससे इसका हर हिस्सा कभी-न-कभी सूर्य की ओर रहता है. एक और बात का पता चला. शुक्र गृह पूर्व से पश्चिम की ओर घूमता है जबकि अन्य सभी गृह पश्चिम से पूर्व की ओर.

माइक्रोवेव से शुक्र गृह के बारे में और भी कुछ पता चला. १९७८ में अमरीकी अनुसंधान रॉकेट पायनीयर शुक्र गृह के पास पहुंच कर उसके चारों तरफ चक्कर लगाने लगा. पायनीयर ने माइक्रोवेव-बीम को शुक्र गृह की ओर फेंका जो गृह की ठोस सतह से टकराकर वापस पायनीयर आया. वापस आयी माइक्रोवेव के अध्ययन से शुक्र गृह की सतह के बारे में जानकारी मिली. शुक्र गृह की ५/६ सतह औसत सतह से ऊंची है और बाकी औसत से नीची, जिसमें शायद गृह के जन्म के समय पानी भरा

माइक्रोवेव एंटीना लगी मोबाईल टीवी वैन

होगा. दो हिस्सों में तो पृथिवी से भी ऊँची पहाड़ों की चोटियां हैं. हो सकता है ये कभी ज्वाला-मुखी रही होंगी जो अब शांत हो चुकी हैं.

५. हमारा जगत और माइक्रोवेव

माइक्रोवेव हमारे पास सौर्य-मण्डल के अलावा भी बहुत जगह से पहुँचती हैं. इसका पता अक्समात लगा. लोग समुद्र-पार एक दूसरे से फोन पर रेडियो-वेव के माध्यम से बातें करते हैं. परन्तु इधर-उधर के स्त्रोतों द्वारा उतपन्न रेडियो-वेवों से स्टैटिक (विघ्न) पैदा होती है जिससे आवाज साफ़ सुनाई नहीं देती.

बैल-टेलीफोन कम्पनी यह जानना चाहती थी कि आवाज में यह स्टैटिक (विघ्न) कहाँ से आ रहा है जिससे उसे दूर किया जा सके. १९३१ में यह काम अमेरिकी इंजीनियर कार्ल गुथे जैन्सकी (Karl Guthe Jansky, १९०५-१९५०) को दिया गया. जैन्सकी ने एक यंत्र बनाया जो रेडियो-वेव रिसीव कर सकता है.

कार्ल गुथे जैन्सकी

जैन्सकी को मालूम था कि रेडियो-वेव वर्षा के तूफान, ऊपर उड़ते हुए विमानों, पास में रखे बिजली के यंत्रों आदि से भी निकलती हैं. दूसरे वैज्ञानिक इनका अध्ययन कर रहे थे. जैन्सकी उन स्त्रोतों का पता लगाना चाहता था जिनके बारे में अभी किसी को जानकारी थी. जैन्सकी ने देखा कि एक हल्की-सी स्टैटिक लगातार किसी अलग स्त्रोत से आ रही है. वह चकित हुआ जब उसे पता लगा कि यह तो ऊपर आसमान से है. वास्तव में यह तो सूर्य से आरही है!

जब सूर्य विभिन्न वेवलेंग्थ के विध्युत-चुम्बकीय विकिरण (इलेक्ट्रो-मैगनेटिक रैडिएशन) भेज सकता है तो वह रेडियो-वेव क्यों नहीं?

हर रोज उसने स्टैटिक के स्त्रोत का पीछा किया. उसे लगने लगा कि यह सूर्य नहीं है. उसे लगा यह स्त्रोत सूर्य से भी परे है. हर रोज उसे लगा इस स्त्रोत की दूरी बढ़ती जा रही है. इसका मतलब है यह स्त्रोत सौर्य-मण्डल के बाहर कहीं सितारों में है. जैन्सकी को लगा, स्टैटिक का स्त्रोत २०-साल पहले अमेरिकी खगोलशास्त्री हैरलो शैपली (Harlow Shapley, १८८५-१९७२) की बतायी आकाश-गंगा (गैलेक्सी) के केन्द्र से आ रहा है. इसका मतलब है कि रेडियो-वेव अरबों-खरबों सितारों के समूह के केन्द्र से, जिसमें हमारा सूर्य भी शामिल है, आ रही हैं.

दिसंबर १९३२ में जैन्सकी ने अपनी खोज के बारे में लिखा -- रेडियो-वेव आकाश-गंगा (गैलेक्सी) के केन्द्र से, जो पृथ्वी से ३०,००० प्रकाश-वर्ष दूर है, आ रही हैं.

ग्रोटे रीबर के घर (व्हीटन, इलिनॉयस) के पीछे के मैदान में बना पहला रेडियो टैलिस्कोप

इस खोज से काफी खलबली मच गयी. न्यूयॉर्क टाइम्स अखबार ने इसे मुखपृष्ठ पर छापा. परन्तु वैज्ञानिकों ने इस पर आगे कुछ काम नहीं किया. सिर्फ अमेरिका के एक रेडियो-शौकीन ग्रोटे रीबर (Grote Reber, १९११-२००२) ने एक प्रयोग किया. उसने १९३७ में एक बड़ी थाली-जैसा रिफ्लेक्टर व्हीटन, इलिनॉयस (Wheaton, Illinois) में अपने घर के पीछे के मैदान में बनाया. आकाश से आयी रेडियो-वेव इससे टकराकर केन्द्र पर स्थित डिटेक्टर तक जा पहुंची. इस तरह पहला रेडियो टैलिस्कोप (दूरबीन) बना.

ग्रोटे रीबर

१९३८ में रीबर ने रेडियो-वेव के अन्य स्त्रोतों को खोजने के लिये आकाश का अध्ययन शुरू किया. उसने आकाश का "रेडियो-नक्शा" भी बनाया और उसे १९४२ में प्रकाशित किया. यह नक्शा बहुत धुंधला था, पर उस समय जो काम रीबर ने किया किसी और वैज्ञानिक ने नहीं किया था.

सोचने की बात यह है कि, पृथ्वी के वायुमण्डल को बहुत कम तरह के विध्युत-चुम्बकीय विकिरण (इलेक्ट्रो-मैगनेटिक रैडिएशन) पार कर सकते हैं. साधारण प्रकाश कर सकता है. अल्ट्रा-वॉयलेट और उससे भी कम वेवलेंग्थ वाली किरणें पार नहीं कर सकतीं. और न हीं इंफ्रा-रेड या उससे लम्बी वेवलेंग्थ वाली रेडियो-वेव. ऐसा लगता है जैसे साधारण प्रकाश की एक खिड़की वायुमण्डल में है जिससे हम सृष्टि को देख सकते हैं!

एक और खिड़की है -- माइक्रोवेव की. ये वायुमण्डल पार कर पृथ्वी पर आ सकती हैं. अगर लम्बी वेवलेंग्थ की रेडियो-वेव पृथ्वी से ऊपर जांयें तो आयनमण्डल (आयनो-स्फीअर, ionosphere) से टकराकर अंतरिक्ष में लुप्त हो जायेंगी. इसी लिए माइक्रोवेवों का रेडियो में प्रयोग नहीं किया गया.

इसी तरह अगर लम्बी वेवलेंग्थ की रेडियो-वेव अंतरिक्ष से पृथ्वी की ओर चलें तो वे आयनमण्डल (आयनो-स्फीअर, ionosphere) से टकराकर वापस लौट जायेंगी और पृथ्वी पर रखे यंत्रों तक नहीं पहुँच पायेंगी. परन्तु, माइक्रोवेव, आयनमण्डल (आयनो-स्फीअर) को पार करती हुई हम तक पहुँच जाती हैं. जैन्सकी और रीबर जिन किरणों को रेडियो-वेव समझ रहे थे, वास्तव में वे माइक्रोवेव थीं.

वैज्ञानिकों को आकाश से आरही माइक्रोवेवों में रुचि क्यों नही थी? इसका कारण था -- क्योंकि माइक्रोवेव का उपयोग रेडियो में नहीं किया जा सकता था, इसलिए माइक्रोवेवों को डिटेक्ट करने और उनके अध्ययन के लिए यंत्रों का निर्माण नहीं किया गया. १९३० के दशक में जब राडार का विकास हुआ, तब ऐसे यंत्रों को भी बनाया गया. दूसरे विश्व-युद्ध के बाद जब राडार एक गुप्त यंत्र न रहा, वैज्ञानिक उन यंत्रों का प्रयोग कर सके. १९५० में रेडियो टैलिस्कोप बनाये गये और रेडियो खगोलविज्ञान (Radio Astronomy) बहुत महत्व का विषय हो गया.

चूंकि रेडियो टैलिस्कोप ऐसी लहरों के लिये है जिनकी वेवलेंग्थ प्रकाश की लहरों से दस-लाख गुना ज्यादा है, रेडियो टैलिस्कोप को भी दस-लाख गुना ज्यादा चौड़ा होना पड़ेगा जिससे इन लहरों का अध्ययन किया जा सके.

इस समस्या को सुलझाने का एक तरीका है -- दो छोटे रेडियो टैलिस्कोपों को, जो एक दूसरे से मीलों दूर हों, इस तरह एक दूसरे से जोड़ा जा सकता है कि वे मीलों चौड़े रेडियो टैलिस्कोप की तरह व्यवहार करें. इस तरह रेडियो टैलिस्कोपों के समूह द्वारा साधारण टैलिस्कोप की अपेक्षा कहीं ज्यादा स्पष्ट देखा जा सकता है.

रेडियो टैलिस्कोप से वैज्ञानिकों को उन बातों का पता लग सका जो साधारण टैलिस्कोप से सम्भव न था. हो सकता है दूर की आकाश-गंगा साधारण टैलिस्कोप से शांत नजर आये. अगर उसे रेडियो टैलिस्कोप से देखा जाय तो हो सकता है हमें केन्द्र से बहुत सारी माइक्रोवेव निकलती दिखायी दें. या फिर किसी विस्फोट द्वारा माइक्रोवेव लहरें भेजने वाला पदार्थ केन्द्र से निकल कर इधर-उधर फैलता दिखे.

इस तरह की आकाश-गंगा को सक्रिय आकाश-गंगा कहते हैं. रेडियो टैलिस्कोप से पता चला कि साधारण आकाश-गंगा भी काफी सक्रिय है.

हमारी अपनी आकाश-गंगा के केन्द्र में, जैन्सकी ने अपनी पहली ही खोज में रेडियो-वेव का पता लगाया. अब हमें मालूम है कि हमारी आकाश-गंगा के केन्द्र के छोटे से स्थान से ढेर सारी माइक्रोवेव निकलती हैं.

वैज्ञानिकों का सोचना है कि हमारी आकाश-गंगा के केन्द्र पर श्याम-छिद्र (ब्लैक-होल) है. (पढ़िये -- आइज़क एसिमोव की पुस्तक, "हमें ब्लैक-होल का कैसा पता लगा?"). शायद हर आकाश-गंगा के केन्द्र पर ब्लैक-होल है. हमें इसका अनुमान कभी न होता अगर माइक्रोवेव की खोज न होती.

ज्यादातर सितारे हमसे इतनी दूर हैं कि हमें उनसे उतपन्न माइक्रोवेवों का पता ही नहीं लगता. हमें तो सिर्फ सूर्य से निकली माइक्रोवेवों का ही पता लगता है क्योंकि वह हमारे नजदीक है. फिर भी कुछ सितारे हैं जिनसे निकली माइक्रोवेव का हमें पता चल जाता है. इन्हें रेडियो-सितारा (रेडियो-स्टार Radio Star) कहते हैं. ये इतने विचित्र लगे कि वैज्ञानिकों ने इनका जोर-शोर से अध्ययन किया. उन्हें लगा कि ये

साधारण सितारे नहीं हैं. इसलिए उनको क्वैजाई-स्टार (quasi-star लैटिन भाषा में जिसका अर्थ है “सितारों-जैसा”) कहा गया और अंत में उन्हें क्वैजार (quasar) के नाम से जाना गया.

मार्टीन शिमिट

क्वैजारों से निकले प्रकाश का ध्यान से अध्ययन किया गया. उनसे निकला स्पैक्ट्रम बड़ा अजूबा था. अंत में १९६३ में डच-अमेरिकी वैज्ञानिक मार्टीन शिमिट (Maarteen Schmidt जन्म १९२९) ने पहेली सुलझाई. स्पैक्ट्रम अजूबा इस लिये था कि जिस क्वैजार का वह अध्ययन कर रहा था वह हमसे बहुत तेजी से दूर भाग रहा था. फिर पता लगा सभी क्वैजार पृथ्वी से दूर बहुत तेजी से भाग रहे हैं.

वैज्ञानिकों का सोचना था कि जो वस्तु जितनी तेजी से पृथ्वी से दूर भाग रही होगी वह पृथ्वी से उतनी ही दूर होगी. अतः क्वैजार पृथ्वी से बहुत दूर होंगे. सबसे पास वाला क्वैजार हमसे दस-खरब प्रकाश-वर्ष दूर है; कुछ तो १७०-खरब प्रकाश-वर्ष दूर हैं!

लगता है क्वैजार बहुत सक्रिय आकाश-गंगा है. टैलिस्कोप से केवल उनके केन्द्र को ही देखा जा सकता है जो हलचल से भरपूर है. आकाश-गंगा का बाहरी हिस्सा अदर्ष्य रहता है और केन्द्र सितारों का धुंधला-सा झुण्ड जैसा दिखता है. अगर क्वैजार माइक्रोवेव न भेजते होते तो वैज्ञानिकों को इनमें कोई रुचि न होती.

जैसा कि अब हम जानते हैं सबसे दूर के क्वैजार १७०-खरब प्रकाश-वर्ष दूर हैं. क्योंकि वहां से हम तक प्रकाश आने में इतना समय लगता है. इसका मतलब है कि इनका अस्तित्व सृष्टि की रचना के शुरू में रहा होगा. अगर हम इन क्वैजार के बारे में अधिक जानकारी पा सकें तो हमें सितारों की आकाश-गंगा, जिससे सृष्टि भरी पड़ी है, के रूप और जन्म के बारे में पता लग सकता है.

कुछ रेडियो-सितारे जगमगाते हैं और तेजी से थोड़ी-थोड़ी देर बाद माइक्रोवेव फैंकते हैं.

एन्टोनी हियूइश

ब्रिटेन के एक खगोलशात्री एन्टोनी हियूइश (Antony Hewish, जन्म १९२४) ने इन सितारों के जगमगाने -- यानी कि तेजी से थोड़ी-थोड़ी देर बाद माइक्रोवेव फैंकने का पता लगाने के लिए एक रेडियो टैलिस्कोप बनाया. उसने ३-एकड़ जमीन में २०४८ अलग-अलग ऐसे यंत्र लगाये जो आने वाली माइक्रोवेवों का पता लगा सकें.

जुलाई १९६७ में हियूइश के एक विद्यार्थी जॉसलिन बैल (Jocelyn Bell) ने तेजी से धड़कती हुई माइक्रोवेव भेजने वाली वस्तु को देखा. धड़कन की गति जैसा उसने सोचा था उससे कहीं अधिक तेज थी और लगातार हो रही थी.

हियूइश ने इन वस्तुओं को धड़कते हुए सितारे (पलसेटिंग-स्टार या पलसार Pulsating Star or Pulsar) कहा. १९६८ में थॉमस गोल्ड (Thomas Gold, १९२०-२००४) ने ध्यान दिलाया कि शायद यह बहुत छोटी और घनी वस्तु है. उसने उसे न्यूट्रोन स्टार कहा. यह छोटी सी वस्तु जिसका वजन एक बड़े सितारे के बराबर परन्तु व्यास केवल लगभग ८-मील! वैज्ञानिकों का अब यह कहना है कि यह दृष्टिकोण सही है.

थॉमस गोल्ड

पलसार बहुत तेजी से अपनी धुरी पर घूमते हैं -- कुछ ही सैकिण्डों में एक चक्कर. कभी-कभी तो सेकिण्ड के दसवें भाग से भी कम में. कुछ समय पहले ऐसे पलसार का पता लगा है जो एक सेकिण्ड के १००० से भी कम भाग में एक चक्कर लगाते हैं. इन असाधारण पलसार तारों का हमें कभी पता ही न लगता अगर हम उनके द्वारा तीव्र गति से भेजी गईं माइक्रोवेवों का पता न लगा पाते.

सन १९२० से वैज्ञानिकों को लगा कि सृष्टि का जन्म शायद १५०-२०० खरब वर्षों पहले हुआ होगा. शायद यह एक छोटे से पदार्थ से शुरू होकर एक बहुत बड़े धमाके (बिग-बैंग) में खत्म हुआ होगा।

सृष्टि अभी भी फैल रही है और इस वजह से आकाश-गंगायें एक दूसरे से दूर होती जा रही हैं.

क्या सचमुच ऐसा हुआ? १९४८ में रूसी-अमेरिकन वैज्ञानिक जॉर्ज गैमो (George Gamow १९०४-१९६८) ने कहा कि अगर बड़ा धमाका (बिग-बैंग) हुआ होगा तो आकाश में सब तरफ माइक्रोवेव की पृष्ठभूमि (बैकग्राउण्ड) मिलनी चाहिये.

आर्नो ऐलन पैंजिआस

१९६४ में जर्मन-अमेरिकन वैज्ञानिक आर्नो ऐलन पैंजिआस (Arno Allen Penzias, जन्म १९३३) और अमेरिकन वैज्ञानिक रॉबर्ट वुडरो विल्सन (Roberet Woodrow Wilson, जन्म १९३८) ने सचमुच में माइक्रोवेव की पृष्ठभूमि (बैकग्राउण्ड) को पाया. यह इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण है कि बड़ा धमाका (बिग-बैंग) वास्तव में हुआ.

रॉबर्ट वुडरो विल्सन

अगर माइक्रोवेवों का पता न लगता तो हमारे पास बड़े धमाके (बिग-बैंग) का कोई अच्छा प्रमाण न होता.
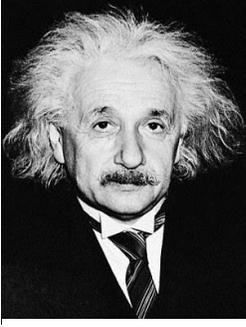
अलबर्ट आइंस्टाइन

१९१७ में जर्मन-स्विस वैज्ञानिक अलबर्ट आइंस्टाइन (Albert Einstein, १८७९-१९५५) ने बताया कि एक अधिक-ऊर्जा वाला मॉलीक्यूल अगर किसी विकिरण की लहर से टकरा जाय तो वह मॉलीक्यूल अपनी ऊर्जा का थोड़ा सा भाग विकिरण के रूप में निकाल देगा. मॉलीक्यूल से निकले विकिरण की मात्रा और दिशा उतनी ही होगी जितनी कि लहर जो मॉलीक्यूल से टकरायी थी. ये लहर दो और मॉलीक्यूलों से भी टकरा सकती हैं और इस तरह चार, आठ, और सोलह ......लहरें पैदा होंगी. पहली लहर एक जैसी ढेर सारी लहरें पैदा करेंगी. पहली लहर, एक वेवलेंग्थ वाली और एक ही दिशा में चलने वाली, ढेर सारी लहरें पैदा कर सकती है. इसे संगठित (coherent) विकिरण कहा गया.

चार्ल्स हार्ड टाउनेस

१९३३ में अमरीकी वैज्ञानिक चार्ल्स हार्ड टाउनेस (Charles Hard Townes, १९१५-२०१५) ने एक ऐसा यंत्र बनाया जो थोड़े से माइक्रोवेव विकिरण से उसी तरह के ढेर सारे माइक्रोवेव विकिरण पैदा कर सके. टाउनेस ने इसे मेज़र (माइक्रोवेव का विस्तार विकिरण के उत्तेजित उत्सर्जन द्वारा. MASER = Microwave Amplification by Stimulated Emission of Radiation) कहा.

थिओडोर हेरॉल्ड मेमन

जो कुछ माइक्रोवेव के साथ किया जा सकता है वह और भी तरह के विकिरण के साथ सम्भव होना चाहिए -- जैसे कि साधारण प्रकाश के साथ. यही सोचते हुए अमेरिकी वैज्ञानिक थिओडोर हेरॉल्ड मेमन (Theodore Harold Maiman, १९२७-२००७) ने एक ऐसा यंत्र बनाया जो साधारण प्रकाश को ढेर सारे प्रकाश की किरणों में बदल सके. इसे लेज़र कहा (प्रकाश का विस्तार विकिरण के उत्तेजित उत्सर्जन द्वारा. LASER = Light Amplification by Stimulated Emission of Radiation).
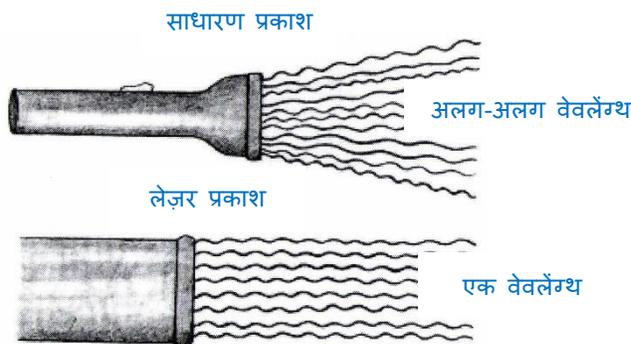
वैज्ञानिकों के लिये मेजर और लेज़र बहुत उपयोगी सिद्ध हुए. आम लोगों के लिये लेज़र द्वारा ऊचे दर्जे के संगीत के रिकार्ड (सीडी) और कम्प्यूटर लिये प्रिंटर बनाये गये.

और यह सब शुरू हुआ जब न्यूटन ने प्रकाश की किरणों को प्रिज्म से गुजरने दिया!

====== समाप्त=====